THE TIMES OF INDIA

Date: 23-07-19

Lift Off

Chandrayaan-2 catapults Indian space science to new heights

TOI Editorials

In a big relief, and a proud moment for India, the country's second Moon mission Chandrayaan-2 successfully launched from Sriharikota at 2.43pm yesterday. This was a week after the first attempted launch had to be aborted due to a technical glitch just an hour before lift-off. The second time, however, the powerful GSLV-MkIII-M1 rocket lifted off smoothly and placed the 3,850kg spacecraft into the Earth orbit. It will now take a series of complex manoeuvres for the spacecraft to be inserted into the Moon orbit following which the lander – christened Vikram – will detach from the orbiter and attempt a soft landing on the lunar surface.

Should that be successful, a rover named Pragyaan is supposed to roll out of the lander and conduct experiments on the Moon's surface. At that point, India would be catapulted into an elite club presently comprising just the US, Russia and China. Taken together, there's no denying that Chandrayaan-2 is a far more complex mission than our first lunar project Chandrayaan-1. The stated objectives of Chandrayaan-2 are to explore the South Pole of the Moon, find more evidence of lunar water, uncover clues about the Moon's evolution and work in the direction of converting the Moon into a test bed for deeper forays into space.

Thus, Chandrayaan-2 is expected to enhance our space capabilities manifold. In fact, it's an important step before India attempts to launch a manned space mission in 2022. Besides, space today is much more within our reach than ever before. Thanks to improving technologies and falling costs of space missions – the Indian Space Research Organisation itself has been at the forefront of launches that are a fraction of previous expenses – space activities are set to get increasingly democratised.

And in the next phase, a host of other developing nations and private companies are expected to exploit space for commercial, strategic and security reasons. Elon Musk's SpaceX is a good example of the private sector stepping up its space game. From space tourism to exoplanetary mineral exploration, all are on the table. In such a scenario, India needs its space prowess to be on point to bolster its growing geopolitical clout. Plus, it should also be at the forefront of formulating new rules for space. With Chandrayaan-2 India has made a strong statement about its space plans. As a next step, India too should open up space to its private sector.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 23-07-19

What Startup Success Says of What Works

ET Editorials

There are interesting sidelights to The Economic Times Startup Awards that deserve to be salvaged from being lost in the glitter of achievement, financial success and celebration of risk-taking and perseverance that light up the awards. One is that startups are solving vital problems that matter to the larger economy and society, as NITI Aayog CEO Amitabh Kant pointed out, taking the example of Delhivery, which was chosen as the Startup of the Year. This company that started as a hyperlocal delivery venture has now morphed into a full-fledged logistics company whose network employs 50,000 people and reaches 17,000 of India's 1,55,600 Postal Index Codes. Some work in vital areas of healthcare and several use artificial intelligence and advanced analytics.

Another striking feature is the geographical concentration of the notable startups in Bengaluru. Of the startups that made it to the shortlist, including the winners, that city accounted for 18. The Delhi-Noida-Gurugram cluster had eight on the list. Chennai had four. Mumbai had one, as had Roorkee, Vadodara, Bhopal and Hyderabad. Clearly, Bengaluru's cluster advantage, of having assorted technical capability on tap, a startup-enabling ecosystem, including startups to which assorted functions can reliably be outsourced, venture capitalists on the prowl and a global network, still beats all drawbacks. Many Bengali names figure on the list, but not one startup from Kolkata made it to the list. State governments have to sit up and ask why their cities are missing out on India's ongoing gold rush.

A number of startups have found e-commerce platforms to be great enablers, some even foraying abroad on global platforms. These deserve to thrive, and not be throttled to satisfy some swadeshi lobby, to let Indian enterprise flourish.

दैनिक भास्कर

Date: 23-07-19

चंद्रयान-2 का सफल प्रक्षेपण स्पेस टेक्नोलॉजी में नया मुकाम

संपादकीय

प्रागैतिहासिक काल से ही मानव को मोहित करने वाले चंद्रमा पर 20 जुलाई 1969 को पहली बार मानव के कदम पड़े। उस घटना को भले ही पचास साल पूरे हो गए पर चंद्रमा की पड़ताल जारी है। आज तक अमेरिका, रूस, जापान, यूरोप व चीन के साथ भारत ने भी चंद्र अभियान सफलता से पूरा किया है। चंद्रमा अस्तित्व में कैसे आया यह चाहे अब भी पक्के तौर पर कहना संभव न हो पाया हो पर वहां पहुंचने वाले मानवरहित यानों से नए व महत्वपूर्ण तथ्य उजागर हुए हैं।

'चंद्रयान-1' ने चंद्रमा की सतह पर पानी की मौजूदगी के सबूत सबसे पहले दुनिया के सामने प्रस्तुत किए और साथ ही यह भी बताया कि चंद्रमा पर आज भी भूकंप जैसे झटके आते हैं। 'क्लेमेंटाइन' के कारण चांद के दक्षिण ध्रुव के स्वरूप का पता चला और वहां पानी होने की संभावना प्रबल हुई। 'प्रॉस्पेक्टर' ने चंद्रमा की सतह के समीप स्थित चंुबकीय क्षेत्र का मानचित्र बनाया। चीन का 'चांग ई 4' चांद के पृथ्वी से नज़र न आने वाले हिस्से पर उतरा। कुल-मिलाकर इन सारे अभियानों से चांद के कई पहलुओं के बारे में बहुमूल्य जानकारी प्राप्त होने के साथ नया विज्ञान व नई टेक्नोलॉजी विकसित हुई। 'चंद्रयान-2' के जरिये भारत पहली बार चांद की सतह पर सॉफ्ट लैंडिंग का प्रयास करेगा और ऐसा करने वाला वह दुनिया का चौथा देश होगा। सोमवार को 'चंद्रयान-2' के सफल प्रक्षेपण के लिए इसरो की टीम अभिनंदन की पात्र हैं। चंद्रमा के अभियानों को चाहे पचास साल हो गए हों पर पूरी दुनिया को 'चंद्रयान-2' में उतनी ही दिलचस्पी है, जितनी कभी 'अपोलो 11' को लेकर रही होगी, क्योंकि नई टेक्नोलॉजी की मदद से नई जानकारी सामने आने की उम्मीद है। अगर हम विभिन्न देशों के मून मिशन्स पर निगाह डालें तो लगता है कि इसमें स्पर्धा फिर जोर पकड़ रही है। चीन 2035 तक चांद पर मानव भेजने की तैयारी में लगा है तो अमेरिका भी फिर से चांद पर किसी अमेरिकी के कदमों की छाप छोड़ना चाहता है। 'अपोलो' की बहन 'आर्टेमिस' का नाम शायद इस मिशन को दिया जाए और 2028 तक चंद्रमा पर फिर किसी अमेरिकी के कदम पड़ेंगे। भारत ने आज तक स्पेस रिसर्च की सत्ता-स्पर्धा से दूर रहकर प्रगति का आदर्श सामने रखा है। हो सकता है कि आगामी दशक में भारत को अपना यह आदर्श छोड़ना पड़े। तब तक स्पेस टेक्नोलॉजी में हमारी तरक्की अबाधित जारी रहे, चंद्रयान-2 मिशन उसी दिशा में नया मुकाम है।

Date: 23-07-19

भीड़तंत्र का 'न्याय' रोकने के लिए अब समाज को तोड़ना होगा मौन

आनंद पांडेय, नेशनल हेड सिटी भास्कर-डीबी स्टार

मोर के शिकार के आरोप में हीरालाल की हत्या। जगह- मध्यप्रदेश का नीमच।... चोरी के शक में अजमल की हत्या। जगह- गुजरात का दाहोद... महिला से प्रेम संबंध के शक में खेतराम की हत्या। जगह- राजस्थान का बाडमेर।

हत्या का कारण... मरने वाले का नाम, धर्म, जाति... मारने की वजह और जगह का नाम बदलते जाइए... फेहरिस्त में कई नाम जुड़ते चले जाएंगे। इतने नाम जुड़ जाएंगे कि ये कॉलम छोटा पड़ जाएगा। सिर्फ नहीं बदलेगा तो आरोपी। सभी वाकयों में आरोपी की जगह सिर्फ एक ही नाम लिखना पड़ेगा- भीड़।

कहा जाता है कि भीड़ की कोई शक्ल और मानसिकता नहीं होती है। ये दोनों बातें सौ फीसदी सही हैं, लेकिन इन दिनों इसी भीड़ ने अपना एक नया तंत्र खड़ा कर लिया है। इस तंत्र में कानून को ठेंगे पर रखकर तत्काल न्याय किया जाता है। बिल्कुल आदिम समाज की तर्ज पर। इन घटनाओं को सिर्फ हिंदू-मुस्लिम या बीजेपी-कांग्रेस के चश्मे से देखना बेमानी होगा। इसके तमाम राजनैतिक, कानूनी और मनोवैज्ञानिक पहलू हैं। कई दफा अदालतों पर से उठता विश्वास, लंबी कानूनी प्रक्रिया की बेचैनी और पुलिस का स्थापित घटिया रवैया भीड़ की हत्यारी मानसिकता के लिए उर्वरक का काम कर जाता है। भीड़ को भरोसा ही नहीं होता है कि आरोपी को सजा और खुद उसे इंसाफ मिल सकेगा। इसलिए गुस्से और बहकावे में आकर भीड़ मूर्खतापूर्ण ढंग से हत्यारी भीड़ में तब्दील हो जाती है। लेकिन भीड़तंत्र की इस न्याय व्यवस्था को

सिर्फ अदालत और पुलिस की नाकामी भर मान लेना जल्दबाजी होगी। असल में हमने नैतिकता और मर्यादा से चलने वाले समाज की बजाय कानूनों की लाठी से हांका जाने वाला असहिष्णु कुनबा ही खड़ा किया है। हम में से अधिकांश लोगों को इस बात का कतई यकीन नहीं है कि सिर्फ एक आम नागरिक की हैसियत से भी हमें इंसाफ मिल सकता है। इसीलिए संगठनों की अहमियत बढ़ गई है। एक नागरिक जब सिर्फ एक नागरिक के तौर पर गुहार लगाता है तो उसे अनसुना कर दिया जाता है। उसकी सुनवाई तो तभी होती है, जब वो किसी संगठन का सदस्य बनकर दबाव बनाने में कामयाब होता है। कई दफा भीड़ भी जल्दबाजी में खड़ा 'अव्यवस्थित संगठन' ही होता है। इस तरह की घटनाओं में आमतौर पर ये संदेश देने की कोशिश भी की जाती है कि- हम कानून से नहीं डरते। इसी कारण से देखने में आता है कि ऐसी घटनाओं की बाकायदा वीडियोग्राफी भी की जाती है और उसे सोशल मीडिया पर प्रसारित भी किया जाता है। सिर्फ अपना रौब और खौफ पैदा करने के लिए।

राजनीतिक कारणों को तो अनदेखा किया ही नहीं जा सकता है। नेता जानते हैं कि भूखे को भड़काना आसान होता है। तमाम तरह की भूख से जूझ रहा इंसान जब राजनैतिक पार्टियों के हत्थे चढ़ता है तो वो कब भीड़ और कब हत्यारी भीड़ में तब्दील हो जाता है, उसे अहसास ही नहीं हो पाता है।

इस सब को रोकने के लिए हमें तत्काल मौन तोड़ना होगा। क्योंकि माना जाता है कि- मौनं स्वीकृति: लक्षणम् यानी मौन सहमति का सूचक है। कहीं कुत्सित मानसिकता के अपराधी समाज की इस चुप्पी को समर्थन न मान लें, इसलिए पूरी ताकत से इन अपराधियों का विरोध करना होगा। हर संभव तरीके से, हर संभव मंच पर।

नईदुनिया

Date: 23-07-19

चांद के नए मिशन पर

सिर्फ अंतरिक्ष ही नहीं अपितु रक्षा क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति करनी पड़ेगी तभी भारत विकसित देशों की श्रेणी में शामिल होगा। सेना के हथियारों के लिए दूसरे देशों पर निर्भर हैं।

संपादकीय

चंद्रयान-2 का सफल प्रक्षेपण भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन यानी इसरो की श्रेष्ठता पर मुहर लगाने के साथ ही यह भी रेखांकित कर रहा है कि उसके लिए अंतरिक्ष की चुनौतियों से पार पाना अब कहीं अधिक आसान हो गया है। यह इसरो की काबिलियत का ही प्रमाण है कि उसके वैज्ञानिकों ने उन तकनीकी खामियों को बहुत जल्द दूर कर लिया जिनके चलते इस अंतरिक्ष अभियान को कुछ दिनों के लिए टाल दिया गया था। चूंकि इसरो चंद्रयान-1 अभियान को सफलतापूर्वक अंजाम दे चुका था इसलिए यह भरोसा बढ़ गया था कि चंद्रयान-2 भी कामयाब रहेगा। आखिरकार ऐसा ही हुआ।

अब इंतजार है उस दिन का है जब सितंबर के पहले सप्ताह में हमारा यान चंद्रमा की उस सतह पर पहुंचेगा जहां आज तक कोई नहीं पहुंचा। चंद्रमा का दक्षिणी ध्रुव न केवल दुनिया से अपरिचित है, बल्कि काफी जटिल भी है। माना जाता है कि चंद्रमा के इस हिस्से में पानी के साथ खनिज भंडार भी हो सकते हैं। इसी कारण भारत के इस अंतरिक्ष अभियान पर दुनिया की निगाहें हैं। निगाहें इस उत्सुकता की वजह से भी हैं कि आखिर इसरो के वैज्ञानिक कहीं कम कीमत में अपने अंतरिक्ष अभियान को सफलतापूर्वक कैसे पूरा कर लेते हैं?

अब इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत अंतरिक्ष की एक बड़ी शक्ति के रूप में उभर आया है। इसका प्रमाण मंगलयान की सफलता ने भी दिया था और फिर अभी हाल में एंटी सैटेलाइट तकनीक के सफल परीक्षण ने भी। अब इसके प्रति सुनिश्चित हुआ जा सकता है कि इसरो के वैज्ञानिक वह सब कुछ हासिल करने में सक्षम होंगे जिसे अंतरिक्ष की चुनौतियों के रूप में देखा जाता है।

इसरो की ओर से अर्जित सफलताएं हर भारतीय को गौरवान्वित कराने वाली हैं। देशवासियों को रह-रहकर गौरव भरे क्षण उपलब्ध कराने वाले इसरो के वैज्ञानिक बधाई के पात्र हैं। यह स्वाभाविक है कि उन्हें चारों ओर से बधाई और प्रोत्साहन मिल रहा है, लेकिन यह सही समय है जब इस पर विचार किया जाए कि आखिर सफलता जैसी गाथा इसरो लिखने में सक्षम है वैसी ही अन्य वैज्ञानिक, तकनीकी संस्थान क्यों नहीं लिख पा रहे हैं? इस पर विचार इसलिए किया जाना चाहिए, क्योंकि रक्षा सामग्री के निर्माण के मामले में हम आत्मनिर्भर नहीं हो पा रहे हैं।

यह अच्छी स्थिति नहीं कि भारत दुनिया के सबसे बड़े हथियार आयातक देश के रूप में जाना जाए? समस्या केवल यही नहीं कि हम उन्नत किस्म के लड़ाकू विमान, पनडुब्बियां आदि नहीं बना पा रहे हैं, बल्कि यह भी है कि सेना की जरूरत पूरी कर सकने लायक छोटे हथियार भी नहीं बना पा रहे हैं। केवल इतना ही नहीं, विभिन्न क्षेत्रों में काम आने वाली तमाम मशीनों के लिए भी हम दूसरे देशों पर निर्भर हैं।

हमारे नीति-नियंताओं को यह ध्यान रखना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रों में आत्मनिर्भर बनकर ही भारत को विकसित देश बनाया जा सकता है। बेहतर होगा कि इसरो का गुणगान करते हुए हमारे नीति-नियंता उन कारणों पर भी ध्यान दें जिनके चलते अन्य तकनीकी संस्थान अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतर पा रहे हैं या फिर धीमी गति से बढ़ रहे हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 22-07-19

बदहाल हो चुके हैं देश के बड़े शहर

शेखर गुप्ता

हमारे शहरों की हालत खस्ता है। वैश्विक एजेंसियों के ताजा आंकड़े बताते हैं कि विश्व के 20 में से 15 सर्वाधिक प्रदूषित शहर भारत में हैं। जितनी तेजी से शहरीकरण हो रहा है और हालात बिगड़ रहे हैं, वैसे में आने वाले दिनों में सर्वाधिक प्रदूषित 30 शहरों में से 20 भारत के होंगे या ऐसे ही अन्य आंकड़े सुनने को मिलते रहेंगे। शहरों में यातायात रेंग रहा

है। मुंबई में अब इसकी गति आठ किलोमीटर प्रति घंटा है, बेंगलूरु में हालत और खराब है। गूगल मैप को मेरा सुझाव है कि वह इसका नाम बदलकर वाटरलू कर दे।

हैदराबाद की स्थिति थोड़ी बेहतर हो सकती है, कोलकाता में भी सुधार हो रहा है। हालांकि इसके लिए वहां का आर्थिक पराभव उत्तरदायी है। दिल्ली के हालात निकट भविष्य में तो मुंबई या बेंगलूरु जैसे नहीं होंगे लेकिन वह तेजी से उस दिशा में बढ़ रही है। खासतौर पर अगर आप दिल्ली से गुरुग्राम या नोएडा का सफर कर रहे हैं। दिल्ली -मुंबई-कोलकाता-बेंगलूरु-हैदराबाद में 9 करोड़ से अधिक लोग रहते हैं। उदाहरण के रूप में लें तो यह आबादी हमें जैसिंडा आर्डेन और केन विलियमसन जैसे नायक देने वाले देश न्यूजीलैंड की आबादी का 20 गुना है। इतना ही नहीं यह आबादी लक्जमबर्ग की आबादी के 150 गुना के बराबर है। मैं यूरोप के इस छोटे से खूबसूरत देश का जिक्र क्यों कर रहा हूं, यह आगे बताऊंगा। मुंबई की आबादी का 50 फीसदी झुग्गियों में रहता है। यह आबादी फिल्मों के सेट और गरीबों से संवेदना रखने और उन पर लिखने वाले उदारवादियों के लिए ठीक है लेकिन यहां एक बार फिर न्यूजीलैंड के बारे में सोचिए। हमारी वाणिज्यिक राजधानी की आबादी न्यूजीलैंड के दोगुना है और जीवन की परिस्थितियां भी बेहद खराब हैं। कोलकाता की स्थिति भी ठीक नहीं और बेंगलूरु तेजी से उस दिशा में बढ़ रहा है। देश का कोई शहर बिना झुग्गियों के नहीं है। यहां तक कि सरकार द्वारा योजनापूर्वक बसाया गया चंडीगढ़ भी नहीं।

मुंबई में जिसे झुग्गी कहा जाता है, दिल्ली में वह अवैध कालोनी कही जाती है। यहां जीवन स्तर उतना खराब नहीं रहता जितना मुंबई में लेकिन बहुत बेहतर स्थिति भी नहीं होती। चाहे जो भी हो, जितनी न्यूजीलैंड की कुल आबादी है, उतने लोग तो दिल्ली में अवैध तरीके से रहते हैं। हमारे सरकारी अस्पताल, चिकित्सा सुविधा और शिक्षा व्यवस्था की हालत खराब है। इन सभी जगहों पर भीड़ है और इनका स्तर उप सहारा अफ्रीका वाला है लेकिन दिल्ली के सरकारी कॉलेजों में दाखिले के लिए हॉर्वर्ड के स्तर के अंक चाहिए।

अगर हमारे शहर इतने बुरे हैं तो लाखों लोग अपने अपेक्षाकृत बेहतर गांव छोड़कर इन शहरों में क्यों चले आते हैं? ऐसा इसलिए क्योंकि गांवों की हालत भी बेहतर नहीं है। हवा की गुणवत्ता को छोड़ दें तो शेष सभी मानकों पर गांव शहरों से भी बदतर हैं। भले ही भारत दुनिया की सबसे बड़ी तीन या पांच अर्थव्यवस्थाओं में शामिल हो लेकिन शहरों को लेकर हमारी मानसिकता गांधीवादी आडंबर से प्रभावित है कि शहर बुरे होते हैं और गांव अच्छे। हमने आंबेडकर और गांधी का वह चर्चित संवाद सुना है जिसमें गांधी ने कहा था कि भारत गांवों में रहता है, जवाब में आंबेडकर ने सवाल किया: लेकिन क्या ऐसा हमेशा चलता रहना चाहिए? केंद्रीय मंत्रिमंडल में हमेशा ग्रामीण विकास मंत्रालय रहा है लेकिन आजादी के बाद पांच दशकों तक शहरी विकास मंत्रालय नहीं रहा। भारत गांवों का देश है की रूमानियत ने देश के शहरों, उसके गरीबों का नुकसान किया जबकि गांवों को भी कोई फायदा नहीं पहुंचा।

यहां तक कि एपीजे अब्दुल कलाम के राष्ट्रपति रहते पुरा (शहरी सुविधाओं को गांव पहुंचाना) जैसे विचार के जरिए इसे और मजबूती दी गई। हर किसी ने इस विषय पर उनके पावर प्वाइंट पेरजेंटेशन को सराहा लेकिन अलग हटकर हर किसी ने इस पर आशंका प्रकट की। पहली बात तो यह कि देश के गांवों की आर्थिकी इतनी मजबूत नहीं कि वे शहरों के स्तर का बुनियादी ढांचा तैयार कर सकें। राजनीतिक दल भी ग्रामीणों से पानी, बिजली या अन्य सुविधाओं का शुल्क लेने में हिचकते हैं। सवाल यह भी है कि जब हमारे शहरों की हालत इतनी बुरी है तो वह दरअसल किन सुविधाओं की बात कर रहे थे?

इस मानसिकता ने बहुत नुकसान पहुंचाया है और इसके दूरगामी परिणाम हैं। हम शहरों को बुरा और गांवों को अच्छा मानते हैं। ऐसे में शहरों का कभी सुनियोजित विकास ही नहीं हुआ। शहर झुग्गियों, बिल्डरों की बनाई इमारतों और माफियाओं के भरोसे रहे। हमारे शहर बिना बुनियादी ढांचे के विकसित होते हैं। इस ढांचे की जरूरत तीन पीढ़ी बाद महसूस होती है जब पानी, बिजली, सड़क और मेट्रो की आवश्यकता उठ खड़ी होती है। आनन-फानन में जरूरी उपाय किए जाते हैं लेकिन फिर भी लाखों की तादाद में कारें और दोपहिया पार्किंग की जद्दोजहद में सड़कों पर जहां तहां खड़े किए जाते हैं। इसके शिकार केवल गरीब नहीं होते। मुंबई का फैंसी वर्ली-परेल विकास इसका उदाहरण है। बीते दो दशक में खासकर पुरानी कपड़ा मिल की जमीन पर ढेरों अपार्टमेंट और बिजनेस टावर बन गए हैं। ज्यादातर ने पानी, पार्किंग और सुरक्षा जैसा बुनियादी ढांचा खुद तैयार किया है। ये उन गरीब बस्तियों के बीच खड़ी इमारतें हैं जिनके पास सुविधाओं का अभाव है। गुरुग्राम की फैंसी इमारतों की बात करें तो इनके पास खुद के विशाल सेप्टिक टैंक और डीजल भंडार हैं। सेप्टिक टैंक इसलिए बने क्योंकि किसी ने देश के इस शानदार नए उत्तर-आधुनिक शहर के लिए सीवर लाइन बिछाने पर ध्यान नहीं दिया। दूसरा किसी को सरकारी क्षमताओं पर भरोसा नहीं था। आपको याद होगा कुछ वर्ष पहले मारुति फैक्टरी में श्रमिकों के असंतोष की खबर सामने आई थी। उस वक्त यूनियनों और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने आरोप लगाया था कि पुलिस ने बड़ी तादाद में कर्मचारियों की जान ली और उनके शव गटर और सीवर में फेंक दिए। तत्कालीन मुख्यमंत्री ने आत्मविश्वास भरा बयान दिया था कि यह झूठ है क्योंकि गुरुग्राम में कभी सीवर बनाया ही नहीं गया। इस सप्ताह यह स्तंभ लिखने की वजह बना बंबई उच्च न्यायालय का एक आदेश जिसके जरिये मुंबई की लंबे समय से लंबित तटीय सड़क परियोजना को रोक दिया गया है। 219 पन्नों के इस निर्णय को लिखा है मुख्य न्यायाधीश प्रदीप नंदरजोग और न्यायमूर्ति एन एम जामदार ने। लंबे अरसे के बाद इतना सरल सहज आदेश पढऩे को मिला। न्यायाधीशों ने उचित ही कहा है कि पर्यावरण और विकास के बीच कोई विवाद नहीं है लेकिन संतुलन और न्याय प्रक्रिया का पालन आवश्यक है।

उन्होंने इस परियोजना को व्यवहार्यता अथवा पर्यावरण को नुकसान के आधार पर नहीं रोका बल्कि इसकी तकनीकी वजह है। उनका कहना है कि यह परियोजना एक सड़क के रूप में मंजूर की गई लेकिन इसमें समुद्र का 90 हेक्टेयर इलाका लिया जाना है। ऐसे में यह एक भवन निर्माण परियोजना कहलाएगी भले ही ली गई जमीन का इस्तेमाल पार्क, बस पार्किंग, साइकिल ट्रैक या जॉगिंग ट्रैक बनाने में किया जाए। सरकार चाहे तो दोबारा मंजूरी की मांग कर सकती है लेकिन उसे यह मंजूरी शहर विकास परियोजना के रूप में लेनी होगी। आप भले नाराज हों लेकिन सामाजिक कार्यकर्ता जीत गए हैं। फैसले को सावधानी से पढ़ें तो आपको रोना आएगा। मैं कानून को दोष न देते हुए केवल एक बिंदु का उल्लेख करूंगा जहां न्यायाधीशों ने कहा कि परियोजना को वन्यजीव मंजूरी की भी आवश्यकता है।

याची ने कहा था कि इससे तटवर्ती इलाकों में मूंगे की चट्टानें नष्ट होंगी। अदालत में पेश किए गए अध्ययन बता चुके हैं कि हाजी अली और वर्ली के निकट कुल चार वर्ग फीट इलाके में मूंगे की चट्टान मिली हैं। सच यही है कि परियोजना पूरी होगी भले ही इसमें वक्त लगे और लागत 1,000 करोड़ रुपये ज्यादा हो जाए। मुझे नहीं पता कि मूंगा बचेगा या नहीं लेकिन मैं आशा करता हूं कि वह बचे। क्योंकि झोपड़पट्टी में रहने वाले प्रतीक्षा कर सकते हैं, तब तक कार्यकर्ता जश्न मना लें।

यह 'कोरल कल्पनालोक' में रहने जैसा है। याद रहे दिल्ली मेट्रो और बसों में महिलाओं की नि:शुल्क यात्रा के पक्ष में दलील दी गई थी कि लक्जमबर्ग ऐसा कर चुका है। लक्जमबर्ग की आबादी 6 लाख है, यानी दिल्ली की आबादी का 3 फीसदी। उसकी प्रति व्यक्ति आय भारत की प्रति व्यक्ति आय का 55 गुना है। जब तक हमारे अपने लक्जमबर्ग रहेंगे

और हम मानते रहेंगे कि चार फुट मूंगा दो करोड़ लोगों से बेहतर है, तब तक हमारे शहरों की हालत खस्ता रहेगी। इस बीच कहीं अधिक बदतर गांवों से लोगों का आना भी जारी रहेगा।

जनसत्ता

Date: 22-07-19

भीड़ और कानून

संपादकीय

देश में जिस तरह से भीड़ के 'न्याय' की संस्कृति चल पड़ी है और लोगों को पीट-पीट कर मौत के घाट उतारने की बर्बर घटनाएं सामने आ रही हैं, वह चिंताजनक तो है ही, एक लोकतांत्रिक और सभ्य राष्ट्र के लिए शर्मनाक भी है। इस तरह की घटनाओं का ग्राफ जिस तेजी से बढ़ रहा है, उससे साफ है कि देश में कानून-व्यवस्था का कोई मतलब नहीं रह गया है। उन्मादी जंगल राज कायम कर रहे हैं और सरकारें चुपचाप देख रही हैं। इस तरह की घटनाएं कानून-व्यवस्था बनाए रखने का दावा करने वाली सरकारों के लिए किसी कलंक से कम नहीं हैं। तीन दिन पहले बिहार के छपरा और वैशाली जिले में भीड़ ने जिस तरह से चार लोगों को पीट-पीट कर मौत के घाट उतार दिया, उससे साफ है कि पुलिस और प्रशासन ऐसी घटनाओं को रोक पाने में एकदम नाकाम साबित हुआ है। छपरा जिले के एक गांव में जिन तीन लोगों को गांव वालों ने मार डाला, उन पर मवेशी चोरी का आरोप था, जबकि वैशाली में जो युवक मारा गया उसके बारे में कहा गया है कि वह बैंक लूटने आया था। पिछले हफ्ते ही राजस्थान के अलवर जिले में मामूली-सी घटना के बाद एक मोटर साइकिल सवार को भीड़ ने मार डाला था।

सवाल है कि क्या भीड़ कानून को अपने हाथ में इसलिए ले रही है कि उसे कानून के शासन में, पुलिस तंत्र में, न्याय प्रणाली में कोई भरोसा नहीं रह गया है? क्या ऐसा करने वालों में कानून का कोई खौफ नहीं रह गया है? अगर ऐसा है तो यह वाकई कानून के शासन के लिए बड़ी और खुली चुनौती है। भीड़ के हाथों अब तक जितनी भी हत्याएं हुई हैं, उनमें ज्यादातर मामले बच्चा चोरी, पशु चोरी जैसी घटनाओं से जुड़े हैं। पिछले तीन साल में सबसे ज्यादा सक्रिय गोरक्षक हुए और गोरक्षा के नाम पर कई 'गोतस्कर' मौत के घाट उतार दिए गए। गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड जैसे राज्यों में ये घटनाएं ज्यादा दर्ज हुई हैं। आंकड़े बता रहे हैं कि सन 2010 से अब तक गोहत्या के शक में भीड़ के हमले की सत्तासी घटनाएं हुईं , जिनमें चौंतीस लोग मारे गए। गंभीर बात यह है कि इनमें ज्यादातर घटनाएं 2014 के बाद की हैं। लेकिन किसी भी मामले में अब तक कोई ऐसी सख्त कार्रवाई होती नहीं दिखी जिससे कानून हाथ में लेने वालों को कड़ा संदेश जाता। जाहिर है, सरकारों के इस लचर रवैए से तो ऐसा करने वालों का दुस्साहस और बढ़ेगा ही!

भीड़ हिंसा की बढ़ती घटनाओं पर संज्ञान लेते हुए पिछले साल सुप्रीम कोर्ट ने निर्देश दिया था कि हर जिले में पुलिस अधीक्षक स्तर के एक अधिकारी की नियुक्ति की जाए, खुफिया सूचनाएं जुटाने के लिए विशेष कार्य बल बनाए जाएं जो सोशल मीडिया में चल रही गतिविधियों पर पैनी भी नजर रखें। सर्वोच्च अदालत ने 'भीड़ तंत्र' से निपटने के लिए सरकार को कानून बनाने को भी कहा था। लेकिन हुआ क्या? सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बाद केंद्रीय गृह मंत्री ने दो उच्चस्तरीय कमेटियां बनाईं थीं, इन कमेटियों ने भारतीय दंड संहिता और आपराधिक दंड प्रक्रिया संहिता में संशोधन कर कानून को

सख्त बनाने के सुझाव दिए। लेकिन हाल में केंद्र सरकार ने भीड़ हिंसा से निपटने के लिए कोई भी कानून बनाने से यह कहते हुए इनकार कर दिया है कि राज्यों के पास पर्याप्त कानून हैं, वे सख्ती से उन्हें लागू करें। लेकिन सवाल यह है कि केंद्र अपनी जिम्मेदारी से बच कैसे सकता है? यह तो गेंद राज्यों के पाले में डालने जैसा है। ऐसे भीड़ तंत्र की संस्कृति खत्म नहीं होने वाली।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 22-07-19

मनरेगा कार्यक्रम विफलता का स्मारक कैसे बन गया

हिमांशु, एसोशिएट प्रोफेसर, जेएनयू

विगत तीन वर्षों से अर्थव्यवस्था में गिरावट के प्रमाण बहुतायत में हैं। यह गिरावट मांग में कमी का नतीजा है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में मांग में बहुत गिरावट हुई है। 5 जुलाई को पेश केंद्रीय बजट से अपेक्षित था कि इन चिंताओं पर गौर किया जाएगा, पर मौका गंवा दिया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में मांग में वृद्धि पैदा करने के लिए चुनावी वादे के अनुरूप नगद हस्तांतरण के अलावा कोई प्रयास नहीं किया गया है। अन्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रति भी सरकारी रवैया उदासीन दिखा। ये कार्यक्रम न केवल ग्रामीण ढांचे और संपत्ति में वृद्धि करते हैं, बल्कि परोक्ष रूप से ग्रामीण मांग और रोजगार भी बढ़ाते हैं।

अखिल भारतीय कार्यक्रम महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। पिछले वर्ष के संशोधित व्यय की तुलना में इसका बजटीय आवंटन घटा है। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) की सरकार ने अपने पहले कार्यकाल में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) सरकार के दूसरे कार्यकाल की त्रुटिपूर्ण नीतियों को ही जारी रखा। यूपीए ने अपने पहले कार्यकाल में मनरेगा को लागू किया था और उसी ने इस कार्यक्रम को कमजोर करके इसके मूल चरित्र को बदल दिया। सरकार ने इसके बजटीय आवंटन को कम रखा और नौकरशाही ने अड़चनों को बढ़ाकर कार्यक्रम को प्रभावित किया। एनडीए ने भी इसी नीति को जारी रखा।

नेशनल सैंपल सर्वे ऑफिस वर्ष 2007-08 से मनरेगा और निजी बाजार द्वारा अस्थाई मजदूरों को दिए जा रहे वेतन भुगतान पर नजर रख रहा है। हाल ही में जारी पीरियोडिक लेबर फोर्स सर्वे (पीएलएफएस) की रिपोर्ट में भी इसके आंकड़े देखे जा सकते हैं। मनरेगा के लागू होने के दूसरे वर्ष 2007-08 में कार्यक्रम के तहत ग्रामीण पुरुषों के लिए भुगतान बाजार में हो रहे भुगतान से पांच प्रतिशत अधिक था और महिलाओं के लिए 58 प्रतिशत अधिक था। इसी वजह से इस कार्यक्रम ने 50 प्रतिशत महिला श्रम को अपनी ओर खींचा। वर्ष 2009-10 आते-आते पुरुषों के लिए मनरेगा भुगतान बाजार की तुलना में 90 प्रतिशत रह गया, जबकि महिलाओं के लिए 26 प्रतिशत ज्यादा रहा। वर्ष 2011-12 में महिलाओं को मनरेगा के तहत होने वाला भुगतान भी बाजार के भुगतान के करीब पहुंच गया। वर्ष 2017-18 में बाजार में होने वाला भुगतान मनरेगा के तहत होने वाले भुगतान से (पुरुषों के लिए) 74 प्रतिशत ज्यादा और महिलाओं के लिए

21 प्रतिशत ज्यादा हो गया। स्पष्ट है, जब बाजार में काम के लिए ज्यादा भुगतान हो रहा है, तो कोई मनरेगा में काम मांगने क्यों जाएगा?

लेकिन बाजार या निजी क्षेत्र की अपनी कमियां हैं, जिसके कारण विशेष रूप से दक्षिण भारतीय राज्यों में महिलाओं की मनरेगा में भागीदारी असाधारण है। केरल में मनरेगा का लाभ लेने के लिए केवल महिलाएं आ रही हैं। हालांकि गुजरात सहित अनेक राज्यों में 2017-18 में कोई मनरेगा कार्य दर्ज नहीं हुआ। मनरेगा के तहत होने वाले भुगतान को बाजार की तुलना में काफी कम रखकर इस कार्यक्रम को खत्म करने की कोशिश चल रही है।

मनरेगा के तहत होने वाला भुगतान विशेषज्ञ समूह द्वारा प्रस्तावित राष्ट्रीय न्यूनतम वेतन 375 रुपये प्रतिदिन से आधा है। 4 जुलाई को पेश आर्थिक सर्वे भी गरीबी और असमानता घटाने के लिए न्यूनतम वेतन को पर्याप्त ऊंचे स्तर पर रखने की पैरोकारी करता है। जब सरकार न्यूनतम वेतन संहिता को आगे बढ़ा रही है, तब उसके द्वारा चलाया जा रहा सबसे बड़ा रोजगार कार्यक्रम एक दशक से न्यूनतम वेतन की अवहेलना करता आ रहा है।

संकट में पड़ी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को उबारने की दिशा में मनरेगा जीवन रेखा हो सकता था। आज मनरेगा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में जान नहीं फूंक पा रहा है। शुरू के पांच वर्षों में मनरेगा ने न केवल ग्रामीण वेतन-मजदूरी को बल दिया था, इससे ग्रामीण मूलभूत ढांचे को भी मदद मिली थी और वह रोजगार मिला था, जिसकी ग्रामीण आबादी को बड़ी जरूरत थी। 27 फरवरी, 2015 को प्रधानमंत्री मोदी ने संसद में स्पष्ट कर दिया था कि वह चाहेंगे, मनरेगा विफलता का एक स्मारक हो जाए, हालांकि वह इस कार्यक्रम को राजनीतिक कारणों से खत्म नहीं करेंगे। वह लक्ष्य प्राप्त हो चुका है, जिसकी ओर बढ़ने की शुरुआत यूपीए-2 में ही हो गई थी।

THE HINDU

Date: 22-07-19

The tremor of unwelcome amendments

The Right to Information (Amendment) Bill is a twin attack on accountability and the idea of federalism

Aruna Roy & Nikhil Dey , [Aruna Roy and Nikhil Dey are social activists who work with the Mazdoor Kisan Shakti Sangathan and the National Campaign for People's Right to Information]

"Amendments" have haunted the Right to Information (RTI) community ever since the RTI Act came into effect almost 14 years ago. Rarely has a law been so stoutly defended by activists. It is not possible to pass a perfect law. But it was a popular opinion strongly held by most RTI activists that a demand for progressive amendments could be used as a smokescreen by the establishment to usher in regressive changes.

Nevertheless, the sword of Damocles of regressive amendments has hung over the RTI with successive governments. Amendments have been proposed since 2006, just six months after the law was implemented and many times thereafter. Peoples' campaigns, through reasoned protest and popular appeal, have managed to have them withdrawn.

The proposed amendments tabled in Parliament on July 19, 2019 have been in the offing for some time now. In the form of the Right to Information (Amendment) Bill, 2019, they seek to amend Sections 13, 16, and 27 of the RTI Act which carefully links, and thereby equates, the status of the Central Information Commissioners (CICs) with the Election Commissioners and the State Information Commissioners with the Chief Secretary in the States, so that they can function in an independent and effective manner. The deliberate dismantling of this architecture empowers the Central government to unilaterally decide the tenure, salary, allowances and other terms of service of Information Commissioners, both at the Centre and the States. Introducing the Bill in the Lok Sabha, the Minister of State for Personnel, Public Grievances and Pensions, Jitendra Singh, asserted that this was a benevolent and minor mechanism of rule-making rather than a basic amendment to the RTI law.

Agent of change

Why is there unseemly haste and determination to amend the law? Some feel that it is because the RTI helped with the cross-verification of the affidavits of powerful electoral candidates with official documents and certain Information Commissioners having ruled in favour of disclosure. It is unlikely to be a set of instances but more the fact that the RTI is a constant challenge to the misuse of power. In a country where the rule of law hangs by a slender thread and corruption and the arbitrary use of power is a daily norm, the RTI has resulted in a fundamental shift — empowering a citizen's access to power and decision-making. It has been a lifeline for many of the 40 to 60 lakh ordinary users, many of them for survival. It has also been a threat to arbitrariness, privilege, and corrupt governance. More than 80 RTI users have been murdered because their courage and determination using the RTI was a challenge to unaccountable power.

The RTI has been used brilliantly and persistently to ask a million questions across the spectrum — from the village ration shop, the Reserve Bank of India, the Finance Ministry, on demonetisation, non-performing assets, the Rafale fighter aircraft deal, electoral bonds, unemployment figures, the appointment of the Central Vigilance Commissioner (CVC), Election Commissioners, and the (non)-appointment of the Information Commissioners themselves. The information related to decision-making at the highest level has in most cases eventually been accessed because of the independence and high status of the Information Commission. That is what the government is trying to amend.

The RTI movement has struggled to access information and through it, a share of governance and democratic power. The Indian RTI law has been a breakthrough in creating mechanisms and platforms for the practice of continual public vigilance that are fundamental to democratic citizenship. The mostly unequal struggle to extract information from vested interests in government needed an institutional and legal mechanism which would not only be independent but also function with a transparency mandate and be empowered to over-ride the traditional structures of secrecy and exclusive control. An independent Information Commission which is the highest authority on information along with the powers to penalise errant officials has been a cornerstone of India's celebrated RTI legislation.

Part of checks and balances

The task of the Information Commission is therefore different but no less important than that of the Election Commission of India. Independent structures set up to regulate and monitor the government are vital to a democratic state committed to deliver justice and constitutional guarantees. The separation of powers is a concept which underscores this independence and is vital to our democratic checks and balances. When power is centralised and the freedom of expression threatened no matter what the context, democracy is definitely in peril. That is perhaps why these set of amendments have to be understood as a deliberate architectural change to affect, in a regressive manner, power equations, the freedom of expression and democracy. The Commission which is vested by law with status, independence and authority, will now function like a department of the Central government, and be subject to the same hierarchy and demand for obeisance. The decision of the government to usurp the powers to set the terms and conditions of service and salaries of an independent body must be understood as an obvious attempt to weaken the independence and authority granted by the law.

Apart from Section 13 which deals with the terms and conditions for the Central information Commission, in amending Section 16, the Central government will also control through rules, the terms and conditions of appointment of Commissioners in the States. This is an assault on the idea of federalism.

Opaque moves

All the provisions related to appointment were carefully examined by a parliamentary standing committee and the law was passed unanimously. It has been acknowledged that one of the most important structural constituents of any independent oversight institution, i.e. the CVC, the Chief Election Commission (CEC), the Lokpal, and the CIC is a basic guarantee of tenure. In the case of the Information Commissioners they are appointed for five years subject to the age limit of 65 years. It was on the recommendation of the parliamentary standing committee that the Information Commissioner and CIC were made on a par with the Election Commissioner and the CEC, respectively. The manner in which the amendments are being pushed through without any citizen consultation, bypassing examination by the standing committee demonstrates the desperation to pass the amendments without even proper parliamentary scrutiny. The mandatory pre-legislative consultative policy of the government has been ignored. Previous governments eventually introduced a measure of public consultation before proceeding with the amendments. In fact, both the United Progressive Alliance and the National Democratic Alliance put out proposed amendments to the RTI rules on the website for public deliberation. But the present regime seems determined to pass these amendments to the law itself without any consultation.

The reason is not far to seek. If the amendments are discussed by citizens and RTI activists in the public domain, it would be apparent that these amendments fundamentally weaken an important part of the RTI architecture. They violate the constitutional principles of federalism, undermine the independence of Information Commissions, and thereby significantly dilute the widely used framework for transparency in India.

The RTI community is worried. But the sword of Damocles is double-edged. It is an idiom originally used to define the hidden insecurity of an autocrat. Questions are threats to unaccountable power. The RTI has unshackled millions of users who will continue to use this democratic right creatively and to dismantle exclusive power. The RTI has been and will be used to withstand attacks on itself and strengthen the

movement for transparency and accountability in India. Eventually, the Narendra Modi government will realise that while it might be able to amend a law, it cannot stop a movement.